सामाजिक ताना–बाना

– जगमोहन चोपता

बराली एक्सप्रेस चली तो साथ चला सामाजिक जीवन का ताना–बाना भी। एक तरफ इस बराली एक्सप्रेस से सफर करते हुए कुछ पीछे छूटती जा रही चीजों की ओर नज़र जाती है तो दूसरी ओर नये पैसेंजर्स की तरह इसमें सवार होती जाती हैं कुछ बेहद आशावान छवियां।

खेती–किसानी वाले समाज में पशुधन की सबसे ज्यादा अहमियत होती है। हल लगाने से लेकर खेतों के लिये खाद तैयार करने में पशुओं का बड़ा सम्बन्ध रहता है। साथ ही साथ दूध, ऊन और मांस के लिये भी इन पर बहुत निर्भरता रहती है। इसीलिये सभी परिवारों के पास गाय, भैंस और बैल जरूरी अंग हैं। कुछ–कुछ परिवारों के पास सौ पचास जीवन भेड़ बकरियों के भी होते हैं। जानवरों के चुगान के लिये भी पूरे क्षेत्र में बड़ी स्पष्ट व्यवस्था है। बराली के ठीक सामने एकल सौली, जखोधार से लेकर लाटूबगड़ तक मलखोला वालों के जीवन चरने जाते तो बामणी बोड़, तिलसौणी और भैली की तरफ तिलखवा के परिवारों के जीवन। गोशालाओं की व्यवस्था भी कुछ इसी प्रकार है कि मलखवा वालों के गोशालाएं दो बाटा की तरफ तो तिलखवा वालों की गोशाला नलगांव वाले रास्ते की तरफ रहती हैं। इसमें बराली एकमात्र जगह अपवाद है जहां दोनों ही खोला के जानवर चरने के लिये जाते हैं।

पहाड़ पर मवेशियों को जब–तब मरना आम बात है। कभी किसी पहाड़ से गिरकर तो कभी बाघ (गुलदार) के हाथों। कभी कभार कुछ बीमारी या चोट फटांग से भी मरते हैं। मवेशियों के मरते ही आसमान में गेरूड़ (गिद्ध) घूमने लगते हैं। इनकी तादाद इतनी होती है कि इनको दूर से ही देखा जा सकता है। बड़े–बड़े झुण्ड में गेरूड़ के घूमने पर पूरे इलाके के लोगों को पता लग जाता है कि मवेशी कहीं मरा है।

गांव में बड़े बुजुर्ग गपशप में आसमान की ओर माथे पर हाथ लगाकर एकटक गेरूड़ (गिद्ध) के झुण्ड को देखते हुए कहते हैं, ऐ के गेरूबाखर मोर हवोला। अरे सेद वे धार बे लमड ह्वौल। ऐ! किसी के गाय–बकरी मरे होंगे, शायद पहाड़ की धार से गिर गये होंगे।

किसी भी जानवर को गेरूड़ का झुण्ड दो तीन दिन में ही साफ कर देता है। इनको आसमान में उड़ते देख गांवों

के कुत्ते भी सक्रिय हो जाते हैं। उनकी निशानदेही पर वे भी दावत में शरीक हो जाते हैं। डंगरों पर दावत उड़ा रहे गिद्धों के अलावा कौवे, कुत्ते और सियार भी शामिल हो जाते हैं। ऐसे में वह जगह गिद्ध भोज के साथ ही युद्ध के मैदान सा बन जाता है। गांव के कुत्तों की भी मौज आ जाती। शाम को जब भरपेट शिकार खाकर ये कुत्ते घर लौटते हैं तो उनसे आ रही बदबू की वजह से नाक पर हाथ रखकर गांव की महिलायें आवाज लगाती। छिः ते कुकुर पे न ला। डंगर खे के आयू सू। वहीं कई बार कुत्ते गाय या भैंस की हड्डी लेकर घरों में आ जाते। घरों के बच्चे या बड़े लट्ठ लेकर उनके पीछे पिल पड़ते। वहीं भाभियां अपने देवरों को चिढ़ाने के लिये कहती ऐ बिट्टू बाबा, तुमो कुकुर मीट ले के ऐ हो। आज त कुकर चुल्ल मा चढ़े द्यो।

और उधर देवर की हाजिर जवाबी का भी कोई तोड़ नहीं होता, वे कहते ओ हो बौजी, जल्दी आओ आज भौत दिन बाद तुम शिकार खाला। पहाड़ में लोग हास्य बोध में इतने धनी होते हैं कि किसी भी क्षण इसको गंवाये बिना नहीं रखते।

लम्बी गर्दन वाले इन गेरूड़ के झुण्ड का अन्य जानवरों के साथ लड़ाई का आंनद लेने के लिये ग्वाले भी पहुंच जाते। जानवर के सड़ने की बदबू के बावजूद यह नजारा इतना कौतूहल भरा होता है कि छोटू और उसके साथी इसको देखने से नहीं चूकते। एक और वजह भी जो बच्चों को इस भोज के दर्शक बनाती है। वह है गेरूड़ के पंख। गांव घरों में कहते हैं कि गेरूड़ के पंख को घर और गोशाला में लगाने से सांप नहीं फटकता। पता नहीं इसमें कितनी सच्चाई होती लेकिन यही वजह रहती कि बच्चे इनके लड़ने भिड़ने के बाद इनके शरीर से छूटे सुन्दर चमकीले काले व सफेद छिट्टे वाले पंखों को बटोरने के लिये लालायित रहते है। इनको बटोरने में बच्चों में भी खूब छीना झपटी होना आम बात होती है। आसमान में इन गेरूड़ के झुण्ड को देखकर छोटू को रामलीला में भरत द्वारा गाई जाने वाली पंक्तियां याद आ जाती हैं–

शाही महलों में चीलें आज मंडरा क्यूं रहे इतने
सभी छोटे–बड़े बहुरंग के आसार कैसे हैं

छोटू सोचता कि क्या सच में राजा दशरथ को भी इन ढोर डंगरों की तरह रखा गया होगा जो इतने गेरूड़ अयोध्या के ऊपर घूम रहे हैं। छोटू का मन ढ़ोर डंगर की मौत के साथ भरत प्रसंग के प्रति जोड़ देता। एक पल के लिये गेरूड़ के झुण्ड उसको पिताविहीन हो चुके भरत के साथ संवेदात्मक रूप से जोड़ देते हैं। लेकिन अगले ही पल डंगरों को खाते गेरूड़ के पंखों की ओर छोटू का ध्यान चला जाता है। वो सोचता है इस बार तो बड़ा वाल पंख उठाकर लाऊंगा। ये गेरूड़ जानवरों के खाने के समय के अलावा बहुत कम दिखाई देते हैं। गांव के लोग कहते हैं कि ये सब चाड़ा डीप की चट्टानों में रहते हैं।

जानवरों को खाते समय इन गेरुड़ों को देखने में ही घिन आती है लेकिन घर गांवों में जागर की शुरुआत ही इन गेरूड़ के नाम से शुरू होती है। लोदला के कप्तान जब किसी के घर में घटयला (पूजा) लगाते हैं तो सबसे पहले एक हाथ कान पर और एक हाथ से ढौंर को बजाते हुए कहते हैं–

स्वर्णपंखी गेरूड़ जाग, मृत लोक जाग, बरमा का बेद जाग।

इसके साथ ही वे ढौंर को धिन धिनिक, धिन धिनिक कर तेज–तेज बजाते। घर के बड़े बुर्जुग आरती की धूप लेकर चारों तरफ फिराते। लेकिन कई बार बाघ द्वारा गाय मारने पर गांव वाले मरे जानवर में निवान डाल देते हैं ताकि बाघ का भी काम तमाम हो जाय। बाघ तो पता नहीं मरता कि नहीं मरता लेकिन उस साल बहुत से गेरूड़ मर जाते हैं। वे डंगर को खाते ही इधर उधर लड़खड़ाने लगते हैं। कुछ उड़ पाते हैं कुछ वहीं ढेर हो जाते हैं। छोटू सोचता है कि कभी तो पूजा की शुरुआत इन्हीं से की जाती है और कभी जहर से। समाज की इस तरह की उहापोह करने वाली प्रक्रिया उसे परेशान करती।

वही दूसरी तरफ स्कूल की किताबों में इनको प्रकृति का सफाई कर्मी कहा जाता है। जब भगोटा के दर्शन गुरूजी सामाजिक अध्ययन पढ़ा रहे थे और उन्होंने किताब में गेरूड़ को दिखाते हुए कहा इनको प्रकृति का सफाई कर्मी कहा जाता है। छोटू का ध्यान किताब में बने चित्र के बजाय गेरूडांग वाले खेत में गोरू पर झपट रहे गेरूड़ के झुण्ड पर चला गया। वो सोच रहा था कि किताब में ये सफाईकर्मी हैं शायद इसीलिये कप्तान घट्यल्या इनको सफाई के लिये जगाने के लिये ही बोलते होंगे। छोटू का मन कर रहा था कि दर्शन गुरूजी से पूछ लें। लेकिन फिर मार की डर से वो चुपचाप लिखने लगा 'गिद्ध प्रकृति के सफाईकर्मी हैं।'

(लेखक अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन चमोली गढ़वाल, उत्तराखण्ड से जुड़े हैं)